श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

UG- 11.12 द्वितीय सोपान

स्व धाम प्रस्थान को देखो हो रहे श्रीकृष्ण तैयार ।
उद्धृत किए उद्धव समक्ष अद्भुत अनमोल उद्गार ।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
एकादशः स्कन्धः
॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच
न रोधयति मां(यँ) योगो, न सां(ङ्)ख्यं(न्) धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो, नेष्टापूर्तं(न्) न दक्षिणा ॥ 1॥
व्रतानि यज्ञश्छान्दां(म्)सि, तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्सं(ङ्)गः(स्), सर्वसं(ङ्)गापहो हि माम् ॥ 2॥

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- प्रिय उद्धव! जगत् में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है। यही कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे वश में कर लेता है, वैसा साधन न योग है न सांख्य, न धर्मपालन और न स्वाध्याय। तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त और दक्षिणा से भी मैं वैसा प्रसन्न नहीं होता। कहाँ तक कहूँ-व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्संग के समान मुझे वश में करने में समर्थ नहीं हैं।

सत्सं(ङ्)गेन हि दैतेया, यातुधाना मृगाः(ख्) खगाः ।

गन्धर्वाप्सरसो नागाः(स्), सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ 3॥

विद्याधरा मनुष्येषु , वैश्याः(श्) शूद्राः(स्) स्त्रियोऽन्त्यजाः ।

रजस्तमः(फ्) प्रकृतयस्- तस्मिं(म्)स्तस्मिन् युगेऽनघ ॥ 4॥

बहवो मत्पदं(म्) प्राप्तास्- त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।

वृषपर्वा बलिर्बाणो, मयश्चाथ विभीषणः ॥ 5॥

सुग्रीवो हनुमान्ऋक्षो, गजो गृध्रो वणिक्पथः ।

व्याधः(ख्) कुब्जा व्रजे गोप्यो, यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ 6॥

निष्पाप उद्धव जी! यह एक युग की नहीं, सभी युगों की एक-सी बात है। सत्संग के द्वारा ही दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण-गुह्यक और विद्याधरों को मेरी प्राप्ति हुई है। मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज आदि रजोगुणी-तमोगुणी प्रकृति के बहुत-से जीवों ने मेरा परमपद प्राप्त किया है। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय दानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियाँ, यज्ञपत्नियाँ और दूसरे लोग भी सत्संग के प्रभाव से ही मुझे प्राप्त कर सके हैं।

ते नाधीतश्रुतिगणा, नोपासितमहत्तमाः ।

अव्रतातप्ततपसः(स्), सत्सं(ङ्)गान्मामुपागताः ॥ 7॥

उन लोगों ने न तो वेदों का स्वाध्याय किया था और न विधिपूर्वक महापुरुषों की उपासना की थी। इसी प्रकार उन्होंने कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत और कोई तपस्या भी नहीं की थी। बस, केवल सत्संग के प्रभाव से ही वे मुझे प्राप्त हो गये।

केवलेन हि भावेन, गोप्यो गावो नगा मृगाः ।

येऽन्ये मूढधियो नागाः(स्), सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ 8॥

गोपियाँ, गायें, यमलार्जुन आदि वृक्ष, व्रज के हरिन आदि पशु, कालिय आदि नाग-ये तो साधन-साध्य एक सम्बन्ध में सर्वथा ही मूढ़बुद्धि थे। इतने ही नहीं, ऐसे-ऐसे और भी बहुत हो गये हैं, जिन्होंने केवल प्रेमपूर्ण भाव के द्वारा ही अनायास मेरी प्राप्ति कर ली और कृतकृत्य हो गये।

यं(न्) न योगेन सां(ङ्)ख्येन, दानव्रततपोऽध्वरैः ।

व्याख्यास्वाध्यायसं(न्)न्यासैः(फ्), प्राप्नुयाद् यत्नवानपि ॥ 9॥

उद्धव! बड़े-बड़े प्रयत्नशील साधक योग, सांख्य दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, श्रुतियों की व्याख्या, स्वाध्याय और संन्यास आदि साधनों के द्वारा मुझे नहीं प्राप्त कर सकते; परन्तु सत्संग के द्वारा तो मैं अत्यन्त सुलभ हो जाता हूँ।

रामेण सार्धं(म्) मथुरां(म्) प्रणीते,

श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ।

विगाढभावेन न मे वियोग-

तीव्राधयोऽन्यं(न्) ददृशुः(स्) सुखाय ॥ 10॥

उद्धव! जिस समय अक्रूर जी भैया बलराम जी के साथ मुझे व्रज से मथुरा ले आये, उस समय गोपियों का हृदय गाढ़ प्रेम के कारण मेरे अनुराग के रंग में रँगा हुआ था। मेरे वियोग की तीव्र व्याधि से वे व्याकुल हो रही थीं और मेरे अतिरिक्त कोई भी दूसरी वस्तु उन्हें सुखकारक नहीं जान पड़ती थी।

तास्ताः(ह) क्षपाः(फ्) प्रेष्ठतमेन नीता,

मयैव वृन्दावनगोचरेण ।

क्षणार्धवत्ताः(फ्) पुनरं(ङ्)ग तासां(म्),

हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ 11॥

तुम जानते हो कि मैं ही उनका एक मात्र प्रियतम हूँ। जब मैं वृन्दावन में था, तब उन्होंने बहुत-सी रात्रियाँ-वे रास की रात्रियाँ मेरे साथ आधे क्षण के समान बिता दी थीं; परन्तु प्यारे उद्धव! मेरे बिना वे ही रात्रियाँ उनके लिये एक-एक कल्प के समान हो गयीं।

ता नाविदन् मय्यनुषं(ङ्)गबद्ध-

धियः(स्) स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।

यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये,

नद्यः(फ्) प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ 12॥

जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि समाधि में स्थित होकर तथा गंगा आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने नाम-रूप खो देती हैं, वैसे ही वे गोपियाँ परम प्रेम के द्वारा मुझमें इतनी तन्मय हो गयी थीं कि उन्हें लोक-परलोक, शरीर और अपने कहलाने वाले पति-पुत्रादि की सुध-बुध नहीं रह गयी थी।

मत्कामा रमणं(ञ्) जार- मस्वरूपविदोऽबलाः ।

ब्रह्म मां(म्) परमं(म्) प्रापुः(स्), सं(ङ्)गाच्छतसहस्रशः ॥ 13॥

उद्धव! उन गोपियों में बहुत-सी तो ऐसी थीं, जो मेरे वास्तविक स्वरूप को नहीं जानती थीं। वे मुझे भगवान न जानकर केवल प्रियतम ही समझती थीं और जारभाव से मुझसे मिलने की आकांक्षा किया करती थीं। उन साधनहीन सैकड़ों, हजारों अबलाओं ने केवल संग के प्रभाव से ही मुझ परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया।

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य, चोदनां(म्) प्रतिचोदनाम् ।

प्रवृत्तं(ञ्) च निवृत्तं(ञ्) च, श्रोतव्यं(म्) श्रुतमेव च ॥ 14॥

मामेकमेव शरण- मात्मानं(म्) सर्वदेहिनाम् ।

याहि सर्वात्मभावेन, मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ 15॥

इसलिये उद्धव! तुम श्रुति-स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति और सुनने योग्य तथा सुने हुए विषय का भी परित्याग करके सर्वत्र मेरी ही भावना करते हुए समस्त प्राणियों के आत्मस्वरूप मुझ एक की ही शरण सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करो; क्योंकि मेरी शरण में आ जाने से तुम सर्वथा निर्भय हो जाओगे।

उद्धव उवाच

संशयः(श्) शृण्वतो वाचं(न्), तव योगेश्वरेश्वर ।

न निवर्तत आत्मस्थो, येन भ्राम्यति मे मनः ॥ 16॥

उद्धव जी ने कहा- 'सनकादि योगेश्वरों के भी परमेश्वर प्रभो! यों तो मैं आपका उपदेश सुन रहा हूँ, परन्तु इससे मेरे मन का सन्देह मिट नहीं रहा है। मुझे स्वधर्म का पालन करना चाहिये या सब कुछ छोड़कर आपकी शरण ग्रहण करनी चाहिये, मेरा मन इसी दुविधा में लटक रहा है। आप कृपा करके मुझे भलीभाँति समझाइये।

श्रीभगवानुवाच

स एष जीवो विवरप्रसूतिः(फ्),

प्राणेन घोषेण गुहां(म्) प्रविष्टः ।

मनोमयं(म्) सूक्ष्ममुपेत्य रूपं(म्),

मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ 17॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- प्रिय उद्धव! जिस परमात्मा का परोक्ष रूप से वर्णन किया जाता है, वे साक्षात् अपरोक्ष-प्रत्यक्ष ही हैं, क्योंकि वे ही निखिल वस्तुओं को सत्ता-स्फूर्ति-जीवन-दान करने वाले हैं, वे ही पहले अनाहत नादस्वरूप परावाणी नामक प्राण के साथ मूलाधार चक्र में प्रवेश करते हैं। उसके बाद मणिपूरक चक्र (नाभि-स्थान) में आकर पश्यन्ती वाणी का मनोमय सूक्ष्म रूप धारण करते हैं। तदनन्तर कण्ठ देश में स्थित विशुद्ध नामक चक्र में आते हैं और वहाँ मध्यमा वाणी के रूप में व्यक्त होते हैं। फिर क्रमशः मुख में आकर ह्रस्व-दीर्घादि मात्र, उदात्त-अनुदात्त आदि स्वर तथा ककारादि वर्णरूप स्थूल-वैखरी वाणी का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

यथानलः(ख्) खेऽनिलबन्धुरूष्मा,

बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ।

अणुः(फ्) प्रजातो हविषा समिध्यते,

तथैव मे व्यक्तिरियं(म्) हि वाणी ॥ 18॥

अग्नि आकाश में उष्मा अथवा विद्युत् के रूप से अव्यक्त रूप में स्थित है। अब बलपूर्वक काष्ठ मन्थन किया जाता है, तब वायु की सहायता से वह पहले अत्यन्त सूक्ष्म चिनगारी के रूप में प्रकट होती है और फिर आहुति देने पर प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, वैसे ही मैं भी शब्दब्रह्मस्वरूप से क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी के रूप में प्रकट होता हूँ।

एवं(ङ्) गदिः(ख्) कर्म गतिर्विसर्गो,

घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः(श्) श्रुतिश्च ।

सङ्कल्पविज्ञानमथाभिमानः(स्),

सूत्रं(म्) रजः(स्)सत्त्वतमोविकारः ॥ 19॥

इसी प्रकार बोलना, हाथों से काम करना, पैरों से चलना, मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा से मल-मूत्र त्यागना, सूँघना, चखना, देखना, छूना, सुनना, मन से संकल्प-विकल्प करना, बुद्धि से समझना, अहंकार के द्वारा अभिमान करना, महत्तत्त्व के रूप में सबका ताना-बाना बुनना तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सारे विकार; कहाँ तक कहूँ-समस्त कर्ता, करण और कर्म मेरी ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

अयं(म्) हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनि-

रव्यक्त एको वयसा स आद्यः ।

विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति,

बीजानि योनिं(म्) प्रतिपद्य यद्वत् ॥ 20॥

यह सबको जीवित करने वाला परमेश्वर ही इस त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड-कमल का कारण है। यह आदिपुरुष पहले एक और अव्यक्त था। जैसे उपजाऊ खेत में बोया हुआ बीज शाखा-पत्र-पुष्पादि अनेक रूप धारण कर लेता है, वैसे ही कालगति से माया का आश्रय लेकर शक्ति-विभाजन के द्वारा परमेश्वर ही अनेक रूपों में प्रतीत होने लगता है।

यस्मिन्निदं(म्) प्रोतमशेषमोतं(म्),

पटो यथा तन्तुवितानसं(म्)स्थः ।

य एष सं(म्)सारतरुः(फ्) पुराणः(ख्),

कर्मात्मकः(फ्) पुष्पफले प्रसूते ॥ 21॥

जैसे तागों के ताने-बाने में वस्त्र ओतप्रोत रहता है, वैसे ही यह सारा विश्व परमात्मा में ही ओतप्रोत है। जैस सूत के बिना वस्त्र का अस्तित्व नहीं है, किन्तु सूत वस्त्र के बिना भी रह सकता है, वैसे ही इस जगत् के न रहने पर भी परमात्मा रहता है; किन्तु यह जगत् परमात्मास्वरूप ही है-परमात्मा के बिना इसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह संसारवृक्ष अनादि और प्रवाह रूप से नित्य है। इसका स्वरूप ही है-कर्म की परम्परा तथा इस वृक्ष के फल-फूल हैं-मोक्ष और भोग।

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः(फ्),

पं(ञ्)चस्कन्धः(फ्) पं(ञ्)चरसप्रसूतिः ।

दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्-

त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्क(म्) प्रविष्टः ॥ 22॥

इस संसारवृक्ष के दो बीज हैं-पाप और पुण्य। असंख्य वासनाएँ जड़ें हैं और तीन गुण तने हैं। पाँच भूत इसकी मोटी-मोटी प्रधान शाखाएँ हैं और शब्दादि पाँच विषय रस हैं, ग्यारह इन्द्रियाँ शाखा हैं तथा जीव और ईश्वर-दो पक्षी इसमें घोंसला बनाकर निवास करते हैं। इस वृक्ष में वात, पित्त और कफरूप तीन तरह की छाल है। इसमें दो तरह के फल लगते हैं-सुख और दुःख। यह विशाल वृक्ष सूर्यमण्डल तक फैला हुआ है (इस सूर्यमण्डल का भेदन कर जाने वाले मुक्त पुरुष फिर संसार-चक्र में नहीं पड़ते)

अदन्ति चैकं(म्) फलमस्य गृध्रा,

ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ।

हं(म्)सा य एकं(म्) बहुरूपमिज्यैर्-

मायामयं(वँ) वेद स वेद वेदम् ॥ 23॥

जो गृहस्थ शब्द-रूप-रस आदि विषयों में फँसे हुए हैं, वे कामना से भरे हुए होने के कारण गीध के समान हैं। वे इस वृक्ष का दुःखरूप फल भोगते हैं, क्योंकि वे अनेक प्रकार के कर्मों के बन्धन में फँसे रहते हैं। जो अरण्यवासी परमहंस विषयों से विरक्त हैं, वे इस वृक्ष में राजहंस के समान हैं और वे इसका सुखरूप भोगते हैं। प्रिय उद्धव! वास्तव में मैं एक ही हूँ। यह मेरा जो अनेकों प्रकार का रूप है, वह तो केवल मायामय है। जो इस बात को गुरुओं के द्वारा समझ लेता है, वही वास्तव में समस्त वेदों का रहस्य जानता है।

एवं(ङ्) गुरूपासनयैकभक्त्या,

विद्याकुठारेण शितेन धीरः।

विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः(स्),

सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ 24॥

अतः उद्धव! तुम इस प्रकार गुरुदेव की उपासनारूप अनन्य भक्ति के द्वारा अपने ज्ञान की कुल्हाड़ी को तीखी कर लो और उसके द्वारा धैर्य एवं सावधानी से जीवभाव को काट डालो। फिर परमात्मा स्वरूप होकर उस वृत्तिरूप अस्त्रों को भी छोड़ दो और अपने अखण्ड स्वरूप में ही स्थित हो रहो।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायामेकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥